

आत्मकथा¹ - डॉ राजेन्द्र प्रसाद

पाँचवे या छठे बरस में मेरा अक्षरारम्भ कराया गया था । उस समय मेरे भाई अँगरेजी पढ़ने के लिए छपरे भेजे जा चुके थे । उस समय की प्रचलित प्रथा के अनुसार अक्षरारम्भ मौलवी साहब ने कराया था । जिस दिन अक्षरारम्भ हुआ, मौलवी साहब आये, बिसमिल्लाह के साथ अक्षरारम्भ हुआ, शीरनी बाँटी गयी और उनको रुपये भी दिये गये । हम तीन विधार्थी उनके सुपुर्द किये गये - एक मैं और दूसरे अपने कुटुम्ब के ही चचेरे भाई, जिन्में एक यमुना प्रसाद जी सबसे बड़े और मुझसे दो बरस बड़े हैं, तीसरे अब नहीं रहे; वह भी मुझसे बड़े थे ।

पढ़ने का तरीका था कि ख़ुब सवेरे हम लोग उठकर मक़तब में चले आते । मक़तब मेरे पक्के मकान से अलग एक दूसरे मकान के ओसारे में था । एक कोठरी थी जिसमें मौलवी साहब रहा करते और सामने ओसारे में तख़्तपोश पर बैठकर हम लोग पढ़ा करते । मौलवी साहब कभी अपनी चारपाई पर और कभी तख़्तपोश पर बैठकर पढ़ाया करते । सवेरे आकर पहले का पढ़ा हुआ सबक एक बार आमोख़ता करना पड़ता और जो जितना जल्द आमोख़ता कर लेता उसको उतना ही जल्द नया सबक पढ़ा दिया जाता । मैं अक्सर अपने दोनों साथियों से पहले मक़तब में पहुँच जाता और आमोख़ता भी पहले ख़तम करके सबक भी पहले पढ़ लिया करता । यह करते सूर्योदय होकर कुछ दिन भी निकल आता । तब नौकर आता और साथ ले जाकर मुँह-हाथ धुला देता और घर माँ के पास कुछ खिलाने के लिए पहुँचा देता । इसके लिए प्रायः आध घंटे पौन घंटे की छुट्टी मिलती । नाशता करके लौटने पर सबक याद करना पड़ता और सबक याद करके सुना देने के बाद मौलवी साहब हुकुम देते, किताब बन्द करो । किताब बन्द करके तख़्ती निकालनी पड़ती । इन दोनों क्रियाओं के बीच कुछ समय खेलने-कुदने का भी मिल जाता या दुबारा घर जाकर कुछ खा लेने का भी मौका मिल जाता । तख़्ती पर लिखना होता और जब तख़्ती भर जाती तो उसे धोना पड़ता । इस क्रिया में भी कुछ समय आपस में हंसने-खेलने को मिलता । दोपहर को नहाने-खाने के लिए एक-डेढ़ घंटे की छुट्टी मिलती और खाकर फिर मक़तब में ही उसी तख़्तपोश पर सोना पड़ता । मौलवी साहब चारपाई पर सोते । हम लोगों को अक्सर नींद नहीं आती और तख़्तपोश पर लेटे-लेटे शतरंज खेलते और जब मौलवी साहब के जागने का वक्त होता उसके पहले ही गोटियों को उठाकर रख देते । उसी ज़माने में शतरंज खेलना भी आ गया, पर उसका पता नहीं के कब, कैसे और किससे सिखा । फिर सेपहर को दूसरा सबक मिलता और उसको कुछ हद तक याद करके सुनाने के बाद घंटा-डेढ़-घंटा दिन रहते खेलने के लिए छुट्टी मिलती । इसी समय गेंद, चिक्का इत्यादि खेले खेले जाते । संध्या को

¹ यहाँ पर एक अवतरन है डॉ राजेन्द्र प्रसाद की किताब *आत्मकथा* (1947, पटना, साहित्य संसार) से ।

फिर चिराग-बत्ती जलते किताब खोलकर पढ़ने के लिए बैठना पड़ता। दिन के दोनों सबक याद करके फिर सुनाने पड़ते और तब हुक्म होता, किताब बन्द करो । किताब बन्द करके, कायदे के मुताबिक मौलवी साहब को आदाब करके, घर जाकर सो जाते ।

एक चीज, जिसका असर मुझपर बचपन से ही पड़ा है, रामायणपाठ है । गाँव में अक्षरज्ञान तो थोरे ही लोगों को था । उन दिनों एक भी प्राइमरी या दूसरे प्रकार का स्कूल उस गाँव अथवा कहीं जवार-भर में नहीं था । मौलवी साहब हम लोगों को तीन-चार रुपये मासिक और भोजन पाकर पढ़ाते थे । गाँव में एक दूसरे मुसलमान थे, जो जाति के जुलाहा थे, मगर कैथी लिखना जानते थे । उन्होंने एक पाठशाला खोल रखी थी जिसमें गाँव के कुछ लड़के पढ़ते थे । अक्षर पहचानना तो बहुत थोड़े लोग जानते, पर प्रायः प्रतिदिन संध्या के समय कुछ लोग कहीं न कहीं, मठ में या किसी के दरवाजे पर, जमा हो जाते और एक आदमी रामायण की पुस्तक से चौपाई बोलता और दूसरे सब उसे दुहराते । साथ में झाल और ढोलक भी बजाते थे । वन्दना का हिस्सा तो जब रामायण का पाठ आरम्भ होता तो जरूर दुहराया जाता । इस प्रकार अक्षर से अपरिचित रहकर भी गाँव बहुतेरे ऐसे लोग थे जो रामायण की चौपाइयाँ जानते और दुहरा सकते और विशेष करके वन्दना के कुछ दोहों को तो सभी प्रायः बरजबान रखते थे ।